भारतीय जनता पार्टी
BHARATIYA JANATA PARTY
केंद्रीय पुस्तकालय
Central Library
पंडित दीनदयाल उपाध्याय
1916 2016
जन्म शताब्दी वर्ष
25 सितम्बर 2016 - 25 सितम्बर 20

प्रकाशित: 25 जनवरी 2019 को ईचर्चा.इन पर प्रकाशित-

स्वायत्तता का सवाल: नेहरू और इंदिरा चाहते थे अपनी पसंद का न्यायाधीश

सन्नी कुमार

देश आजाद हो चुका था और विभिन्न संस्थाएं लोकतांत्रिक रूप से पुनर्गठित की जा रही थीं। अंत: न्यायपालिका का भी पुनर्गठन हो रहा था। अब, सवाल ये था कि नई न्यायपालिका कैसे बने, कौन कौन जज हों? इसका निदान यह निकाला गया कि फेडरल कोर्ट को ही सर्वोच्च न्यायालय के रूप में पुनर्गठित कर दिया जाए। हालांकि इसको लेकर कोई स्पष्ट राय नहीं थी कि इस नई नवेली आजाद न्यायपालिका का मुखिया कौन होगा, पर यह अनुमान किया जा रहा था कि अब तक फेडरल कोर्ट का नेतृत्व कर रहे 'हरिलाल जे कानिया' ही इसके मुखिया होंगे।

चीजें अपनी गति से चल रही थीं तभी इसमें एक नया पेंच आ गया। देश के प्रथम प्रधानमंत्री, जिनका अभी तक लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचन नहीं हुआ था, जवाहरलाल नेहरू ने जस्टिस हरिलाल की नियुक्ति पर आपत्ति दर्ज कर दी। इस आपत्ति की वजह भी बड़ी दिलचस्प है। दरअसल, नेहरू मद्रास हाई कोर्ट में होने वाली नियुक्तियों से संबंधित एक फाइल देख रहे थे जिसमें जस्टिस हरिलाल जे कानिया ने 'जस्टिस बशीर अहमद' की मद्रास हाईकोर्ट में नियुक्ति के विरुद्ध सिफारिश की थी। नेहरू जी को यह आपत्ति इतनी चुभी कि उन्होंने जस्टिस हरिलाल की नियुक्ति को रोकने का ही मन बना लिया।

नेहरू ने जब इसकी चर्चा पटेल से की तो सरदार पटेल ने कहा कि इस तरह का निर्णय इस समय लेने से गलत संदेश जाएगा और टकराव बढ़ेगा। फिर, पटेल और राजाजी ने मिलकर मामले को संभाला। अंततः दोनों लोग अपने-अपने अदालत में नियुक्त हो गए।

इस प्रसंग को विस्तार से पढ़ना हो तो 'लाइव मिंट' पर विक्रम राघवन की ' A collegium of Nehru, Patel and Rajaji'शीर्षक से प्रकाशित लेख पढ़ सकते हैं। खैर, बात इतनी भर है कि अपनी क्षमता भर न्यायपालिका में 'दखल' देने का काम नेहरू के ही समय से शुरू हो गया था। इसका मतलब यह कतई नहीं है कि आज की सारी समस्याओं का दोष नेहरू पर डाल सरकार से प्रश्न करने छोड़ दिए जाएं। बल्कि इसका उद्देश्य यह है कि हम आप उन हस्तक्षेपकारी प्रवृतियों से परिचित हो पाएं जो ऐतिहासिक रूप से चली आ रहीं हैं। तो चलिए, नेहरू का ही एक और किस्सा सुनाते हैं।

"अब एक मुख्य न्यायाधीश का कार्यकाल खत्म होने को था और दूसरे मुख्य न्यायाधीश चुने जाने थे। वरीयता क्रम में 'जस्टिस पतंजलि शास्त्री' सबसे ऊपर थे इसलिए उनको ही नेतृत्व मिलना था। पर, नेहरू जी जस्टिस शास्त्री से 'नाराज' थे। उस समय वैसे भी सरकार और सर्वोच्च न्यायालय के बीच सांप सीढ़ी का खेल चल ही रहा था। नेहरू जी नहीं चाहते थे कि जस्टिस शास्त्री अगले मुख्य न्यायाधीश बनें।वो 'जस्टिस एम.सी चागला' या 'जस्टिस बी. एन. मुखर्जी' में से किसी एक को अगले चीफ जस्टिस के रूप में देखना चाहते हैं"

मतलब नेहरू 'अपनी पसंद' का न्यायाधीश चाहते थे। हो सकता है कि इस पसंद में लोक कल्याण का भाव छिपा हो पर सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों ने इस लोक कल्याण में कोई रुचि नहीं ली उल्टे यह धमकी दी कि अगर ऐसा करने की कोशिश की गई तो 'सभी जज' इस्तीफा दे देंगे। नेहरू अपनी पसंद के लिए इतना भी टकराव नहीं चाहते थे ,सो शास्त्री जी ही अगले चीफ जस्टिस बने। यह प्रसंग अगर आप एकदम विस्तार से पढ़ना चाहते हैं तो Prof. Godbois की किताब 'The judges of the Supreme Court' पढ़िये। कुछ और ज्ञान मिलेगा।

नेहरू दो बार असफल प्रयास कर चुके थे मुख्य न्यायाधीश बदलने की। उनकी पुत्री 'इंदिरा गांधी' ये सब देख रही थीं। उनको शायद बुरा लग रहा होगा कि ऐसा हो क्यों नहीं पाया। तो जब वो प्रधानमंत्री बनीं तो पिता के इस अधूरे ख्वाब को पूरा किया।

इंदिरा मंत्री और प्रधानमंत्री बनने के पूर्व कॉन्ग्रेस अध्यक्ष रह चुकी थीं। पिता-पुत्री की जोड़ी साथ-साथ राजनीतिक गतिविधियों में रुचि ले रही थी। इसी दौरान, केरल में गैर - कॉन्ग्रेसी सरकार चुनी गई। ई. एस. नंबूदीरिपाद' के नेतृत्व में वामपंथी सरकार केरल में बनी। यह भारत में पहली लोकतांत्रिक वामपंथी सरकार थी। वही वामपंथ जो 'ख्रुश्चेव' से पूछकर ही भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया में शामिल हुए थे अन्यथा उन्हें तो आजादी झूठी लग रही थी।

खैर, सरकार बनी तो सही पर अधिक चल नहीं पाई। पिता-पुत्री की जोड़ी ने इस सरकार को गिराकर राष्ट्रपति शासन लगा दिया। निश्चित रूप से कुछ वजहें रही होंगी, ये वजहें और उन वजहों के पीछे की असली वजहें कॉन्ग्रेसी और वामपंथी ही बेहतर बता पाएंगे। पूछिये उनसे। बहरहाल, आते हैं पिता के अधूरे सपने को पूरा करने पर।

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के चयन को लेकर वरिष्ठता का नियम ही चल रहा था। अर्थात् सबसे वरिष्ठ जज मुख्य न्यायाधीश बन रहे थे। पर, इंदिरा गांधी ने इस क्रम को तोड़ दिया। समय था 1973 का। यानी आपातकाल नहीं था कि सारा दोष 'समय ही खराब था' पर डाल दें। हां, आपातकाल की आहट जरूर थी।

खैर, 1973 में मुख्य न्यायाधीश बनाए गए 'ए. एन. रे' जबकि उनसे सीनियर तीन न्यायाधीश 'जे. एम. शेलट', 'के. एस. हेगड़े', और 'ए. एन. ग्रोवर' मौजूद थे। लेकिन इन तीनों वरिष्ठों से इंदिरा गांधी 'नाराज' थीं। और नाराजगी की वजह क्या थी?

वजह थी 'केशवानंद भारती' का मामला। 24 अप्रैल 1973 को केशवानंद भारती का निर्णय आया और सर्वोच्च न्यायालय ने 7:6 के बहुमत से यह तय किया कि संविधान संशोधन की संसद को प्राप्त शक्ति 'असीमित' नहीं है। अर्थात् संसद संविधान संशोधन तो कर सकती है पर उसको 'मूल ढाँचे' के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। और ये मूल ढाँचा क्या है इसको सर्वोच्च न्यायालय बताएगी। इंदिरा जी को यह 'सीमा' पसंद नहीं आई। इसलिए इस निर्णय के पक्ष में रहने वाले तीनों वरिष्ठ जजों की अनदेखी कर जस्टिस रे को मुख्य न्यायाधीश बना दिया गया।

जस्टिस रे जब मुख्य न्यायाधीश बने तो आपातकाल के दौरान तक बने रहे। 1977 में उनका कार्यकाल पूरा हो गया और अब अगले मुख्य न्यायाधीश के रूप में 'जस्टिस

हंसराज खन्ना' को बनना था, क्योंकि सबसे वरिष्ठ जज वही थे। पर, फिर वही बात थी कि जस्टिस खन्ना इंदिरा जी की पसंद नहीं थे इसलिए 'जस्टिस हमीदुल्ला बेग' मुख्य न्यायाधीश बनाए गए।

आखिर इंदिरा इस बार क्यों नाराज थीं? दरअसल, आपातकाल लग चुका था देश में। 'इंदिरा इज इंडिया और इंडिया इज इंदिरा' जैसा 'बरूआई नारा' लगाया जाने लगा था। जाहिर है ऐसे में आम आदमी की कीमत कुछ नहीं थी। इसी आम आदमी से जुड़ा एक मामला सर्वोच्च न्यायालय में आया जिसे 'एडीएम जबलपुर मामले' के रूप में चर्चित है। यह हेबियस कॉर्पस से जुड़ा मामला था। मोटा मोटी समझिए कि इस मामले में यह तय करना था कि आपातकाल में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्राप्त है या नहीं?

सर्वोच्च न्यायालय ने बहुमत के निर्णय से कहा कि नहीं। आपातकाल में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं है। पर, जस्टिस खन्ना ने विसम्मत निर्णय देते हुए कहा था कि आपातकाल में भी मौलिक अधिकार निलंबित नहीं होते। बस इसी 'अवज्ञा' से नाराज थीं इंदिरा गांधी। और उचित समय आने पर दंड भी दिया, जस्टिस खन्ना को। बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निश्चित नियम ही बना दिया कि वरिष्ठता के हिसाब से ही मुख्य न्यायाधीश का चुनाव होगा ताकि किसी इंदिरा गांधी की 'नाराजगी' का असर न पड़े।

पूरी चर्चा का सार इतना ही है कि जब हम संस्थाओं पर हमले की बात करते हैं और उसका पूरा 'श्रेय' किसी एक दल या व्यक्ति को देते हैं तो ऐसा करना उन पूर्वजों का हक मारना होगा जिन्होंने इसकी नींव रखी थी। सो उनको भी याद करते रहिये।